

आत्मा की उपासना कैसे होती है ?

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 22 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है -

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।

आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ॥22॥

मन की एकाग्रता द्वारा इन्द्रियों के समूह को वश करके अपने में अर्थात् आत्मा में स्थित आत्मा को आत्मा के द्वारा ही ध्याना चाहिये। यही आत्मा की उपासना है।

(गतांक से आगे)

आज तक इस जीव ने कभी भी स्वलक्ष नहीं किया, मात्र परलक्ष करके अनंतबार शुभाशुभ भाव किये हैं और उसी में एकाग्रता की है। अनंतकाल में एकबार भी अपनी आत्मा की एकाग्रता नहीं की।

यहाँ शिष्य प्रश्न पूछता है कि हे प्रभो ! मेरा हित किसप्रकार होगा ? मुझे आत्मा की भावना किसप्रकार होगी ? शुभाशुभभावों की भावना को छोड़कर आत्मा की भावना किसप्रकार होगी ?

उससे कहते हैं कि ह्व आत्मद्रव्य में मन को एकाग्र करके, ज्ञान में आत्मा को पकड़कर फिर दृष्टि में आत्मा ग्रहण करना ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करने का उपाय है।

वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कथित शास्त्रों में जो आत्मा का स्वरूप कहा है, उसका अवलंबन लेना चाहिये। अन्य रागी-द्वेषी देवताओं द्वारा कथित शास्त्रों का अवलंबन नहीं लेना चाहिये। वीतराग-सर्वज्ञदेव द्वारा कथित आत्मा का स्वरूप 21 वीं गाथा में स्पष्ट करत हुये कहा था कि आत्मा ज्ञानादि अनंतगुणस्वरूप, शरीरप्रमाण, असंख्यात प्रदेशी और स्वसंवेदनगम्य है।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अवलंबन बिना मात्र अपनी कल्पना से आत्मा का स्वरूप नक्की करके ज्ञान में आत्मा ग्रहण होता है - ऐसा नहीं है। जिसप्रकार जब वस्तु खरीदने जाते हैं तो पहले वस्तु का मोल (कीमत) पूछते हैं और बराबर वजन करके पश्चात्

नियम के साथ सार शब्द क्यों ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की तीसरी गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं ।

विवरीयपरिहरत्थं भणित्तं खलु सारमिदि वयणं ॥३॥

नियम से जो करने योग्य हो, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही नियम है। विपरीत के परिहार के लिये (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्ध भावों के त्याग के लिये) सार शब्द जोड़ा गया है।

(गतांक से आगे)

अन्तर में मेरा आत्मा सहजानन्दमूर्ति है, वही मेरे सुखोत्पत्ति की जन्मभूमि है। चैतन्य के सुख और आनन्द की अनुभवभूमि कौन ? अपना शुद्ध जीवतत्व ही आनन्दोत्पत्ति का स्थान है। मेरा आनन्द कहीं विषयों में, निमित्तों में अथवा राग में नहीं है; देवपद में भी नहीं - वह तो शुद्ध चैतन्यतत्व में ही है और वही मेरे आनन्द का जन्मस्थान है। ऐसे जीवास्तिकाय का परमश्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और वही नियम है। मोक्षाभिलाषी जीवों को ऐसे शुद्ध जीव का परम श्रद्धान नियम से कर्तव्य है; अतः वह सम्यग्दर्शन नियम है।

ऐसा सम्यग्दर्शन अकेले चैतन्यकन्द सहजानन्द की मूर्ति निरपेक्ष आत्मा के ही आश्रय से उत्पन्न होता है। किसी व्यवहार के, निमित्त के अथवा राग के अवलम्बन से वह सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। यहाँ तो अपने आत्मा को ही भगवान परमात्मा कहा है। ऐसे भगवान परमात्मा के आश्रय से होनेवाली परम प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन होने के बाद ही चारित्र और मुनिदशा होती है, इसके बिना मोक्षमार्ग नहीं होता।

सम्यग्ज्ञान भी अकेले अन्तस्तत्व के आश्रय से है और सम्यग्दर्शन भी अकेले शुद्ध

जीवतत्व के आश्रय से ही उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को कहीं कुछ भी पर का अवलम्बन है ही नहीं - रत्नत्रय तो पर से परमनिरपेक्ष है, उसे तो अकेले चैतन्य का ही अवलम्बन है वह ऐसा रत्नत्रय ही नियम है।

शुद्ध अन्तस्तत्व का विलास कहाँ से प्रकट होता है ? निज शुद्धजीवतत्व ही शुद्धअन्तस्तत्व के आनन्द की जन्मभूमि है। सम्यग्दर्शनरूपी प्रजा की उत्पत्ति अन्तर में शुद्ध चैतन्यतत्व से होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहीं बाहर से उत्पन्न नहीं होता, वह तो अन्तर-स्थित भगवान परमात्मा शुद्धजीवतत्व के आश्रय से ही प्रकट होता है। ऐसे निज परमतत्व का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

अब सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहते हैं - निश्चय ज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।

त्रिकाल चैतन्यज्ञायकज्योति कारणपरमात्मा है। जैसा ध्रुव आत्मा त्रिकाल है, वैसा ही उसका दर्शन-ज्ञान भी ध्रुवत्रिकाल है। ऐसे निजकारणपरमात्मा में श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अविचलस्थिति ही चारित्र है। शरीर की क्रिया अथवा पंचमहाव्रत के विकल्प में चारित्र नहीं है, उसमें जो धर्म माने उसके तो सम्यग्दर्शन भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक निजकारणपरमात्मा में निरन्तर लीनता होने का नाम चारित्र है। वहाँ बाह्य में नग्न दिगम्बरदशा होती है, किन्तु यहाँ तो अन्तरंग के निश्चयचारित्र की बात है। चारित्र तो अन्तर की लीनता में है। ऐसी अन्तर्लीनता बिना, पंचमहाव्रत का पालन करे और उसे चारित्र माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। मोक्षमार्ग का चारित्र तो ध्रुव कारणपरमात्मा में लीनता करना ही है। निश्चय सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को 'नियमसार' कह कर व्यवहार ज्ञान-दर्शन-चारित्र का अभाव बताया है। वह हो भले ही, किन्तु मोक्षमार्ग तो ऐसा निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही है, व्यवहाररत्नत्रय मोक्षमार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शनसहित भी जो पंचमहाव्रतादि व्यवहारचारित्र है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। अन्तर में लीनतारूप निश्चयचारित्र ही सम्यक्चारित्र है और वही नियम है।

इसप्रकार अन्तर में निजपरमात्मद्रव्य के आश्रय से जो ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम है, वही निर्वाण का कारण है। निर्वाण अर्थात् सादि-अनन्त काल तक स्वरूप में स्थित बना रहना। वह भी चैतन्यस्वरूप के ही आश्रय से है। व्यवहार तो स्वयं अस्थिरता

है, उससे स्वरूप में स्थितिरूप निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य तीनों नियमरूप कार्य हैं और वे अन्तर में कारणपरमात्मा के ही आश्रय से होते हैं।

नियम अर्थात् रत्नत्रय, उसकी शुद्धता बताने के लिए उसमें 'सार' शब्द जोड़ा गया है। यहाँ निश्चयरत्नत्रय से विपरीत, व्यवहाररत्नत्रय के परिहारार्थ 'नियम' शब्द के साथ 'सार' शब्द लगाया गया है; अतः निर्विकल्प रत्नत्रय ही 'नियमसार' है और वही निर्वाण का कारण है।

देखो ! आत्मानन्द में झूलनेवाले वनवासी सन्त ने यह टीका की है। स्वयं मुनि हैं, धर्म के स्तम्भ हैं। अन्दर में विकल्पोत्पत्ति हुई है, फलस्वरूप इस टीका की रचना हो गई। फिर भी उस विकल्प का आदर नहीं है, आदर तो शुद्ध स्वभाव का ही है और उसी के आश्रय से शुद्धता वृद्धिगत होती जाती है। छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते-झूलते ऐसी अलौकिक टीका की रचना हो गई है।

इस तीसरी गाथा में 'नियमसार' की व्याख्या की। अब इसकी टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं -

इति विपरीतविमुक्तं रत्नत्रयमनुत्तमं प्रपद्याहम् ।

अपुनर्भवामिण्यां समुद्भवमनंगशं यामि ॥10॥

इसप्रकार मैं विपरीतरहित (विकल्परहित) अनुत्तम (जिसके समान कोई दूसरा उत्तम नहीं है) रत्नत्रय का आश्रय करके मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न अनंग (अशरीरी, अतीन्द्रिय, आत्मिक) सुख को प्राप्त करता हूँ।

स्वभाव के अवलम्बन से निरपेक्ष मोक्षमार्ग सिद्ध किया; उसके ऊपर टीकाकार ने कलश चढ़ाया है।

अनंग सुख अर्थात् अतीन्द्रिय सुख। आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला सुख अनंग सुख है। अंग का अर्थ है शरीर, उससे पार आत्मा के अनुभव का सुख अनंग सुख है। ऐसे सुख को मैं प्राप्त करता हूँ। किसप्रकार ? परमशुद्ध उत्तम रत्नत्रय का आश्रय करके मुक्तिरूपी स्त्री से उद्भवित सुख को प्राप्त करता हूँ। अभी मुक्ति हुई नहीं है, परन्तु अन्तर में अनुभव के बल से मुक्ति-सुख को वर्तमान में ही प्राप्त करता हूँ। मुक्ति

होगी और मुक्ति का सुख मिलेगा - ऐसी बात नहीं की, किन्तु द्रव्य के आश्रय से पर्याय उसमें अभेद होने पर हमारी वर्तमान में ही मुक्ति है। जहाँ भेद को देखते नहीं, अभेद में ही लीन हुए वहाँ वर्तमान में ही मुक्ति है। इसलिये कहा है कि मैं मुक्ति के सुख को प्राप्त करता हूँ। इसीसमय मुनिदशा में मुक्ति जैसा आनन्द अनुभव करता हूँ। मुक्ति का आधार तो भगवान आत्मा है, वह सम्पूर्ण वर्तमान वर्त रहा है, उसी के आश्रय से मैं वर्तमान में मुक्ति के सुख को प्राप्त करता हूँ।

कोई कहे कि पंचमकाल में यह टीका लिखी गई है और इस पंचम काल में तो किसी को मुक्ति होती ही नहीं तो उससे कहते हैं कि जहाँ पर्याय अन्तर में झुककर अभेद हुई, वहाँ पूरे स्वभाव के आश्रय की लीनता से तृप्ति है, ध्रुवस्वभाव के आश्रय से पर्याय कृतकृत्य होकर वर्त रही है; इसलिये अधूरी पर्याय अथवा पूर्ण पर्याय - ऐसे पर्यायभेद को मैं देखता ही नहीं। मैं तो द्रव्य में लीन होने से वर्तमान में ही मुक्ति सुख का अनुभव करता हूँ। अपूर्ण अथवा पूर्ण ऐसे पर्याय के भेद के ऊपर जोर नहीं है, किन्तु अभेद स्वभाव वर्तमान में ही परिपूर्ण है, उसी के ऊपर जोर है और उसमें एकाग्रता से वर्तमान में ही मुक्ति जैसे सुख का मैं अनुभव करता हूँ वह ऐसा टीकाकार मुनिराज कहते हैं। (क्रमशः)

संयोग और संयोगीभावों के आधार पर

एक ही भूमिका के ज्ञानियों के संयोगों और संयोगीभावों में महान अन्तर हो सकता है। कहाँ क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र और कहाँ सर्वार्थसिद्धि के क्षायिक सम्यग्दृष्टि अहमिन्द्र। सौधर्म इन्द्र तो जन्मकल्याणक में आकर नाभिराय के दरबार में ताण्डव नृत्य करता है और सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र दीक्षाकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक में भी नहीं आते, दिव्यध्वनि सुनने तक नहीं आते।

संयोग और संयोगीभावों में महान अन्तर होने पर भी दोनों की भूमिका एक ही है, एक-सी ही है। अतः संयोगीभावों के आधार पर राग या वैराग्य का निर्णय करना उचित नहीं है, ज्ञानी-अज्ञानी का निर्णय भी संयोग और संयोगीभावों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। - पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पृष्ठ - 39

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे)

भगवान तू वस्तु है या नहीं? यदि वस्तु है तो उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं ही। उन अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा का अवलम्बन करते ही, उसके आश्रय में स्थिर होने पर जो निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणामन होता है, वह मोक्षमार्ग है; परन्तु अज्ञानी को इसकी खबर नहीं है। अपनी ऐसी चैतन्यवस्तु के भान बिना, आत्मदर्शन व आत्मज्ञान बिना अकेली क्रियायें कर-करके आत्मा को मरणतुल्य कर डाला है।

जिसतरह समुद्र के तल में जाने पर ही मोती हाथ लगते हैं; उसीतरह सम्पूर्ण शुभराग का उल्लंघन करके अन्तर में डुबकी लगाने पर चैतन्यप्रभु आत्मा हाथ आता है। उसे ही निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा अन्तर्मुख होने पर जो स्व-संवेदन ज्ञान होता है; वह सम्यग्ज्ञान एवं अन्तर्लीनता सम्यक्चारित्रा है।

अब कहते हैं कि अन्तरस्वरूप में मग्न होने पर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है, वह रत्नत्रय है। रत्नत्रय की परमप्रकर्षरूप उत्कृष्ट दशा होने पर, भगवान आत्मा का पूर्ण आश्रय होने पर; उसके फलस्वरूप मोक्षपर्याय प्रगट होती है।

प्रश्न - यदि व्यवहार शुभभाव किंचित् भी मोक्षमार्ग में मददगार नहीं है तो इसे शास्त्रा में साधक क्यों कहा है ?

उत्तर - धर्मी पुरुष के वर्तमान प्रगट निर्मलदशा में वह व्यवहार सहचररूप से रहता है; अतः उसे उपचार से साधक कहा जाता है।

साधक के यह व्यवहाररूप शुभराग किंचित् रहता है और उसी में आयु पूर्ण हो तो स्वर्ग जाता है। यद्यपि ज्ञानी के शुभभावरूप व्यवहार सहचरणे होता

अवश्य है; परन्तु ज्ञानी उसे हेय ही मानता है। अहा ! जिस शुभभाव से तीर्थकर नामकर्म बंधता है, वह भाव भी हेय है। अहा ! जिसको अलौकिक चैतन्यनिधान अन्तर में भासित हो गया, उसे पुण्य से क्या काम ?

देखो, जीव संसार में कर्म के कारण नहीं भटकता; किन्तु स्वरूप में विपरीत श्रद्धान, ज्ञान एवं आचरण के कारण भटकता है। यद्यपि शास्त्रा में ऐसा कथन भी आता है कि जीव कर्मा के कारण संसार में भटक रहा है; परन्तु वह व्यवहारनय की कथनी है, वास्तव में ऐसा नहीं है।

शुद्धचिदानन्दघन प्रभु आत्मा स्वयं है, उसका श्रद्धान न करके उससे विपरीत राग की एवं कर्म की श्रद्धा मिथ्याश्रद्धा है। आत्मा स्वयं ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान न करके राग व कर्म का ज्ञान करना मिथ्याज्ञान है। यह मिथ्याश्रद्धान व मिथ्याज्ञान संसारभ्रमण का मूल है।

अब कहते हैं कि - यह छठवे गुणस्थान की भूमिका की बात है। इसके पहले इसने निज चैतन्यमूर्ति आत्मा का वेदन कर लिया है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो गया है; इसीलिए तो कहते हैं कि - 'सुनिश्चलपने ग्रहण किया हुआ। तात्पर्य यह है कि - निश्चय के साथ भूमिका के योग्य जो व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, वह भी इसके है। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि - अन्दर में जो निश्चयरत्नत्रय प्रगट हुआ, वह अब छूटेगा नहीं अर्थात् अब वह निचली भूमिका में नहीं उतरेगा, किन्तु व्यवहार को छोड़कर अन्दर में ही जायेगा - ऐसा व्यवहार ऊपर के किसी गुणस्थान में है ही नहीं। निश्चय तो वहाँ है ही, व्यवहार का उल्लंघन करके सातवे गुणस्थान में जायेगा। यहाँ यही कहा जा रहा है।

यद्यपि पहले पाँचवे गुणस्थान से ध्यान में सीधे सातवाँ गुणस्थान होता है; किन्तु यहाँ वह बात नहीं है। यहाँ तो छठवे गुणस्थान में जो शुभ विकल्प आते हैं, उनको लांघकर स्वरूप में जाने की, ऊपर चढ़ने की बात है; व्यवहार के लोप करने की बात नहीं है। जिस गुणस्थान की भूमिका में जो व्यवहार होता है, उसका निषेध या लोप कौन कर सकता है और भला ऐसा कोई क्यों करेगा? धर्मी के यथायोग्य व्यवहार होता है; किन्तु उसमें ज्ञानी की उपादेयबुद्धि एवं स्वामित्व नहीं होता।

यहाँ 'व्यवहाररत्नत्रय की बुद्धि की परम्परा में' ऐसा जो कहा है - वह तो व्यवहाररत्नत्रय का कथन है। व्यवहारनय का कथन तो ऐसा ही होता है, उसके

यथार्थ अभिप्राय को समझना चाहिए। वास्तव में तो राग टूटता जाता है और अन्दर में शुद्धि बढ़ती जाती है। उससे अनुक्रम से आत्मा जैसा स्वरूप का प्रगाढ़ अनुभव करता जाता है, वैसे ही वह आत्मा साधकभाव से परिणमता जाता है और व्यवहार छूटता जाता है।

अहा ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है, उसकी दृष्टि, ज्ञान व रमणता होने पर जब उपयोग निर्विकल्प हुआ, शुद्धोपयोगरूप परिणत हुआ, उपयोग निर्विकल्प ज्ञान की भूमिका में आया, तभी से आत्मा साधकपने परिणमता है। उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद अन्तर्भूत हैं। भेद हैं अवश्य; परन्तु मोक्षमार्ग की परिणति में तीनों अभेदरूप हैं, एकरूप हैं। मोक्षमार्ग की परिणति में जब रत्नत्रय के तीन भेदों का भी लक्ष्य नहीं है तो व्यवहार की, राग की क्या कथा? राग का तो इसमें अभाव ही है।

देखो, साधकदशा चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक है। जब साधक स्वरूप का अनुभव करता है, तब आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्रा की एकतारूप से स्वयं परिणमित होता है। उस समय जो यथायोग्य व्यवहार होता है, उसका ज्ञान कराया है।

प्रश्न - क्या यह कथन एकान्त नहीं हो जायेगा ?

उत्तर - हाँ, एकान्त है; परन्तु यह सम्यक् एकान्त है; क्योंकि स्व की ओर ढलती हुई निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रा की दशा ही एकान्त से निश्चय साधक है, यद्यपि बीच में भी व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आते अवश्य हैं; परन्तु वे निश्चय से साधक नहीं हैं। वस्तुतः तो वे बाधक हैं। इन्हें साधक व्यवहारनय से कहने में आता है; परन्तु व्यवहार का कथन तो उपचारमात्रा है। (क्रमशः)

आज तक इस आत्मा ने देहादि पर पदार्थों में ही अपनापन मान रखा है; अतः उन्हीं की सेवा में सम्पूर्णतः समर्पित है। निज भगवान आत्मा में एक क्षण को भी अपनापन नहीं आया है; यही कारण है कि उसकी अनंत अपेक्षा हो रही है। देह की सम्भाल में हम चौबीसों घण्टे समर्पित हैं और भगवान आत्मा के लिये हमारे पास सही मायनों में एक क्षण भी नहीं है। भगवान आत्मा अनन्त अपेक्षा का शिकार होकर सौतेला बेटा होकर रह गया है। - आत्मा ही है शरण, पृष्ठ - 43

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : दो नयों को जानना कहा है न ?

उत्तर : जानना तो ज्ञान का स्वभाव है, जानने के लिये तो सभी नय कहे हैं; परन्तु धर्मरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये तो एकरूप त्रिकालीध्रुव शुद्धचैतन्य सामान्य द्रव्य ही आश्रय करने योग्य है। जानने के विषय में आदरणीयपना मान लेने से दृष्टि की विपरीतता होती है।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य से भिन्न है या अभिन्न ? और किसप्रकार ?

उत्तर : द्रव्य पर्याय से भिन्न है; क्योंकि ध्रुव में तो पर्याय नहीं और पर्याय में ध्रुव आता नहीं अर्थात् ध्रुव पर्याय को स्पर्श करता नहीं, परन्तु पर से भिन्न करने के लिये - ऐसा कहते हैं कि द्रव्य की पर्याय है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सामान्य द्रव्य और विशेष पर्याय - ये दो धर्म एकरूप हो जाते हैं। यह दोनों धर्म अर्थात् सामान्यधर्म और विशेषधर्म एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते।

प्रश्न : समयसार गाथा-11 में पर्याय को अभूतार्थ कहा है, क्या वह सर्वथा है ही नहीं ? तथा गाथा 15 में पर्याय को मुख्य कहकर उसे जैनशासन कहा। कृपया इसका रहस्य समझाइये।

उत्तर : समयसार गाथा - 11 में पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहा है, वहाँ तो पर्याय का आश्रय छुड़ाने के लिये पर्याय को गौण करके अभूतार्थ-असत्यार्थ कहा है, किन्तु पर्याय सर्वथा है ही नहीं - ऐसा मत समझना। गौण करने में पर्याय के अस्तित्व का अस्वीकार नहीं है। तथा गाथा-15 में तो जिसमें अबद्धस्वरूप आत्मा अनुभव में आया, वह पर्याय मुख्य ही है - वह पर्याय जैनशासन है। अहाहा ! मेरा जो द्रव्य विकार रहित वीतरागी तत्त्व है, उसका लक्ष्य करने पर पर्याय में वीतरागता आती है। यह वेदन की पर्याय मुख्य ही है। द्रव्य तो वेदन में आता नहीं, पर्याय ही वेदन में आती है और वह

वेदन की पर्याय मुझे मुख्य है; उसे गौण कर देंगे तो नहीं चलेगा। नाथ ! पूर्णानन्द का नाथ ! जहाँ जाना और अनुभव में आया, वह गौण नहीं हो सकता।

भाई ! वह तो तुझे द्रव्य का लक्ष्य-आश्रय कराने के लिये पर्याय को गौण किया था, परन्तु वेदन तो पर्याय में मुख्य है। भले ही द्रव्य का आश्रय कराने के लिये पर्याय को गौण किया था; किन्तु क्या वह परिणाम कहीं चला जायेगा ? नहीं, नहीं। जो परिणाम अस्तिरूप वेदन में आवे, वह कहाँ जावेगा ? अहा ! यह आत्मा तो पुकार करता है कि वीतरागस्वरूप जो मेरा द्रव्य है, उसका लक्ष्य करने पर मुझे वीतरागता वेदन में आती है और यह वेदन मुझे मुख्य है।

प्रश्न : वस्तु के द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है तो पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आती है ?

उत्तर : वस्तु 'द्रव्य' और 'पर्याय' ऐसे दो स्वभाववाली है। उनमें से द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है, किन्तु पर्याय का स्वभाव 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' ऐसे दो प्रकार का है - अर्थात् पर्याय की अशुद्धता द्रव्यस्वभाव में से आई हुई नहीं है; वह तो तत्समय की पर्याय का ही भाव है, द्वितीय समय में उस पर्याय का व्यय होने पर वह अशुद्धता भी मिट जाती है।

पर्याय की शुद्धता और अशुद्धता के सम्बन्ध में नियम यह है कि जब पर्याय द्रव्याश्रय से परिणमन करती है, तब शुद्ध और जब पराश्रय से परिणमन करती है, तब अशुद्ध होती है; परन्तु वह अशुद्धता न तो पर में से ही आई है और न द्रव्यस्वभाव में से ही आई है।

प्रश्न : पर्याय स्वयं षट्कारक से स्वतंत्र परिणमती है और पर्याय को पर्याय का अपना ही वेदन है तो ध्रुव का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य वह तो मूल वस्तु है। ध्रुव का लक्ष्य करने पर ही पर्याय में आनन्द का वेदन आता है; इसीलिए ध्रुव मूल वस्तु है।

प्रश्न : पर्याय को दूसरे द्रव्य का सहारा नहीं है तो क्या अपने द्रव्य का भी सहारा नहीं है ?

उत्तर : पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र है।

समाचार दर्शन -

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन छिन्दवाड़ा के संयुक्त तत्वावधान में अहिंसा वर्ष के अन्तर्गत दिनांक 17 जनवरी से 23 जनवरी 2004 तक श्री नेमीनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव विविध धार्मिक आयोजनों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ प्रतिदिन प्रातः पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों से होता था। इसी क्रम में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के पंचकल्याणक के विविध विषयों पर मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही ब्र.संवेगी केशरीचन्दजी 'धवल', डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, बाल ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित कपूरचन्दजी करेली, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर के मंगल प्रवचनों का लाभ भी सकल समाज को मिला।

मंगल महोत्सव की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा विधि ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में प्रतिष्ठाचार्य ब्र.पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना एवं सह-प्रतिष्ठाचार्य पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा एवं सहयोगियों द्वारा शुद्ध-आम्नायपूर्वक सम्पन्न कराई गई। सम्पूर्ण पंचकल्याणक का सफल संचालन पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा द्वारा किया गया।

इस अवसर पर मूलनायक 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान, विधिनायक श्री नेमीनाथ भगवान एवं शासननायक श्री महावीर भगवान की प्रतिमायें विराजमान की गईं। इसके अतिरिक्त श्री धरसेनाचार्य, श्री कुन्दकुन्दाचार्य, श्री उमास्वामी आचार्य, श्री समन्तभद्राचार्य, श्री नेमिचन्द्राचार्य एवं श्री पद्मप्रभमलधारिदेव के चरण स्थापित किये गये तथा जिनवाणी माता के रूप में श्री समयसार, श्री नियमसार, श्री मोक्षशास्त्र, श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्री गोम्मटसार एवं श्री पद्मपुराण को विराजमान किया गया।

जिनमंदिर के 81 फीट ऊँचे शिखर पर 81 इंच स्वर्णमयी कलश के साथ डीम पर 6 फीट ऊँचा स्वर्णमयी कलश स्वर्णमयी पावन ध्वजा के साथ विराजमान किया गया तथा गुरुदेवश्री की जन्मजयन्ती पर 115 मंगल कलश के साथ धर्मध्वजा एवं कलशारोहण किया गया।

जन्मकल्याणक के अवसर पर वायुयान से पुष्पवर्षा एवं मैनापुरी का विशाल रत्नजड़ित पालना मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहा।

इस अवसर पर सौधर्म इन्द्र बनने का सौभाग्य श्री जयेशभाई मीनल टोलिया शिकागो (अमेरिका) एवं तीर्थकर नेमिनाथ के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती गुणमाला-मोतीलालजी जैन को मिला।

महोत्सव में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन छिन्दवाड़ा की ओर से सती अंजना, वैराग्य की ओर तथा फैडरेशन शाखा नागपुर की ओर से चेतन रसिया नामक ज्ञानवर्धक, वैराग्यप्रेरक नाटकों की प्रस्तुति की गई।

सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल बनाने में श्री टोडरमल संगीत सरिता जयपुर, श्री नन्दीश्वर सेवा संगठन खनियांधाना, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा नागपुर, शाखा सिवनी, शाखा सागर एवं शाखा करेली, नगर की स्वयंसेवी संस्थायें तथा आवास व्यवस्था में श्री भावेशभाई मुम्बई का विशेष सहयोग रहा।

महोत्सव में भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों की संख्या में जैन साधर्मी बन्धु सम्मिलित हुये तथा अमेरिका एवं लन्दन से लगभग 50 साधर्मी बन्धु पधारे।

महोत्सव के माध्यम से लगभग 1 लाख 25 हजार रुपयों का सत्साहित्य, प्रवचनों के 1000 ऑडियो कैसिट्स, 600 सी.डी. एवं गुरुदेवश्री के 500 फोटो घर-घर पहुँचे। **ह् दीपकराज जैन**

विद्वत्परिषद की जयपुर इकाई का गठन

जयपुर : यहाँ दिनांक 18 जनवरी 2004 को श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद की इकाई का गठन किया गया। जिसमें **संरक्षक** के रूप में पण्डित अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित ज्ञानचन्दजी बिल्टीवाला को चुना गया। **परामर्शदाता** डॉ. पी.सी. जैन एवं डॉ. प्रेमचन्द रांवका को चुना गया। तथा **अध्यक्ष** पण्डित बुद्धिप्रकाशजी भास्कर, **उपाध्यक्ष** पण्डित विमलकुमारजी प्रतिष्ठाचार्य, **सचिव** डॉ. श्रीयांसकुमारजी सिंघई, **कोषाध्यक्ष** पण्डित विनयचन्दजी पापडीवाल एवं **प्रचार सचिव** डॉ.प्रभाकरजी सेठी को चुना गया। **ह् अखिल बंसल**

गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

आचार्य कुन्दकुन्द के जन्मोत्सव पर दिनांक 26 जनवरी 2004 को श्री टोडरमल स्मारक भवन में विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया; कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने की। मुख्यअतिथि पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा एवं ब्र. यशपालजी जैन थे। गोष्ठी में संभव जैन, आशीष जबेरा एवं अभिषेक सिलवानी ने आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन, परिचय एवं जैन संस्कृति में उनके योगदान के ऊपर अपने विचार व्यक्त किये।

अध्यक्षीय भाषण के रूप में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने आचार्य कुन्दकुन्द की प्रसिद्धि के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुये उनकी कृतियों के बारे में कहा कि समयसार में आत्मा के स्वरूप को बताया है जबकि प्रवचनसार में परमात्मा के स्वरूप पर प्रकाश डाला है।

कार्यक्रम का संचालन प्रयंक जैन रहली एवं मंगलाचरण अमित जैन लुकवासा ने किया।

परीक्षा सामग्री शीघ्र भेजे

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड ए-4 बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.) की शीतकालीन परीक्षाएँ 30 व 31 जनवरी तथा 1 फरवरी 2004 को सम्पन्न हो चुकी है।

संबंधित समस्त परीक्षा केन्द्र अपने यहाँ के छात्रों की परीक्षाओं की उत्तरपुस्तिकाएँ एवं मौखिक परीक्षा की रिपोर्ट अविलम्ब परीक्षा बोर्ड कार्यालय, जयपुर को भिजवायें; ताकि परीक्षा परिणाम एवं प्रमाणपत्र का कार्य समय पर सम्पन्न हो सके। साथ ही आगामी ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं के लिये भी परीक्षा केन्द्रों को उचित समय सुविधा प्राप्त हो। **ह् ओमप्रकाश आचार्य, प्रबन्धक (परीक्षा विभाग)**

आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

अलीगढ़ (उ.प्र.) : यहाँ तीर्थधाम मंगलायतन में दिनांक 2 फरवरी से 6 फरवरी 2004 तक पंचकल्याणक महोत्सव की प्रथम वर्षगांठ पर आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

इस महोत्सव में वयोवृद्ध उत्साही विद्वान पण्डित कैलाशचन्दजी जैन अलीगढ़ की कक्षा तथा सुप्रसिद्ध तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के प्रवचनसार परमाणु के ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, डॉ. किरीटभाई गोसलिया, ब्र. हेमन्तभाई गांधी, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर आदि विद्वानों के नियमसार, समयसार एवं तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

प्रातःकालीन प्रवचनों के पूर्व पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी प्रवचन होते थे। इस अवसर पर 170 तीर्थकर मण्डल विधान का आयोजन किया गया। विधि-विधान के कार्य पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना एवं पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री नागपुर के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

इस अवसर पर दिनांक 2 फरवरी, 2004 को वृषभाचल पाण्डाल का उद्घाटन डॉ. किरीटभाई गोसलिया फिनिक्स-अमेरिका द्वारा किया गया तथा पंच दिवसीय प्रथम वर्षगांठ महोत्सव का उद्घाटन श्रीमती कल्या एवं श्रेयस जैन नैरोबी ने किया। झण्डारोहणकर्ता श्री शिवकुमारजी गर्ग, दीपक रेस्टोरेन्ट थे। सभा का संचालन पण्डित राकेशजी शास्त्री नागपुर ने किया। कार्यक्रम का शुभारंभ भव्य जिनेन्द्र शोभायात्रा से हुआ।

इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मंगलार्थी युवा प्रकोष्ठ एवं मंगलार्थी महिला प्रकोष्ठ द्वारा निर्माही नगरी, बाबूलाल जैन बाल विद्यालय के बालकों द्वारा सती मनोरमा, दिल्ली पब्लिक स्कूल अलीगढ़ के छात्रों द्वारा दिव्य देशना नामक नृत्य नाटिका तथा आदिनाथ विद्या निकेतन के छात्रों द्वारा अतीत के झरोखों में नामक नाटकों की प्रस्तुति की गई। राजसभा एवं इन्द्रसभा का भी विशेष आयोजन किया गया।

दिनांक 5 फरवरी को कहान नगर के शिलान्यास का कार्यक्रम प्रतिष्ठाचार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित संजय शास्त्री नागपुर के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। शिलान्यास डॉ. किरीटभाई के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

इसी प्रसंग पर आचार्य कुन्दकुन्द शोध संस्थान के भवन का शिलान्यास श्रीमती ज्योत्सनाबेन अमेरिका एवं इन्द्रकुमार-राजेशकुमार जैन अलीगढ़ द्वारा सम्पन्न हुआ, जहाँ ताड़पत्रिय एवं हस्तलिखित जिनवाणी की सुरक्षा के अतिरिक्त उनके प्रकाशन एवं शोधकार्य की व्यवस्था की जायेगी। इसी दिन जिनवाणी मंदिर में जिनवाणी विराजमान की गई तथा वहाँ पर स्थापित आचार्यों के चित्रपटों का अनावरण भी किया गया।

6 फरवरी को कैलाशपर्वत पर विराजमान भगवान आदिनाथ का महामस्तकाभिषेक किया गया। शिविर में देश-विदेश से पधारे हजारों साधर्मियों ने लाभ लिया। महोत्सव में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर का लगभग 7000/- रुपयों का सत्साहित्य एवं 5859/-रुपये के सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे।

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धान्तिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करे हूँ इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से जयपुर में विभिन्न ट्रस्टों के सहयोग से श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय चल रहा है, जिसमें लगभग 177 छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

अबतक 331 छात्र शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करके शासकीय एवं अर्द्धशासकीय सेवाओं में रहकर विभिन्न स्थानों में तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ संचालित कर रहे हैं, जिनमें से 48 छात्र जैनदर्शनाचार्य की स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं।

ज्ञातव्य है कि यहाँ प्रवेश पानेवाले छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन (तीन वर्षीय शास्त्री स्नातक) कोर्स की परीक्षायें दिलाई जाती हैं, जो बी.ए. के समकक्ष हैं तथा सरकार द्वारा आई. ए. एस. जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के पूर्व छात्र को योग्यतानुसार दो वर्ष का राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर का उपाध्याय परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है जो हायर सैकेण्ड्री (12वीं) के समकक्ष है। इसप्रकार कुल 5 वर्ष का पाठ्यक्रम है। इसके बाद दो वर्ष का जैनदर्शनाचार्य का कोर्स है, जो एम.ए. के समकक्ष है।

उपाध्याय में प्रवेश हेतु किसी भी प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सेकेण्डरी परीक्षा (कक्षा दसवीं) अंग्रेजी सहित उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

यहाँ डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, बाल ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील एवं पण्डित संजीवकुमारजी गोधा के सान्निध्य में छात्रों को निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होता है। सभी छात्रों को आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क रहती है।

आगामी सत्र 25 जून 2004 से प्रारंभ होगा। स्थान अत्यंत सीमित है, अतः प्रवेशार्थी शीघ्र ही निम्नांकित पते से प्रवेशफार्म मंगाकर अपना प्रार्थना-पत्र अंक सूची सहित जयपुर प्रेषित करें। यदि प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें देवलाली (नासिक) महाराष्ट्र में 09 मई से 26 मई, 2004 तक होनेवाले ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा, जिसमें उन्हें प्रारंभ से अन्त तक (18 दिन) रहना अनिवार्य होगा।

यदि दसवीं का परीक्षाफल अभी उपलब्ध न हुआ हो तो पूर्व परीक्षाओं की अंक सूची की सत्यप्रतिलिपि के साथ प्रार्थनापत्र भेज सकते हैं। दसवीं का परीक्षा परिणाम प्राप्त होते ही तुरंत भेज दें।

देवलाली का पता -

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली,
जिला - नासिक 422401 (महा.)
फोन - (0253) 2491044

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धा. महाविद्यालय,
श्री टोडरमल स्मारक भवन,
ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)
फोन - (0141) 2705581, 2707458